फरवरी १९८९ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

निशंक की कृतज्ञता-विभोर सही वंदना

समय बीतता है। किसी बुद्ध के सिखाए हुए पुरातन शुद्ध धर्म में नाना प्रकार की अशुद्धियां आ जाती हैं। लोग मुक्तिदायिनी शुद्ध साधना करनी भूल जाते हैं। धर्म के नाम पर किसी न किसी साप्रांदायिक जंजाल को अपने गले का हार बना लेते हैं। कर्मकांडप्रमुख हो जाते हैं। बाह्यय आडम्बर प्रधान हो जाते हैं और फिर भिन्न भिन्न थोथी काल्पनिक दार्शनिक मान्यताओं का घटाटोप सच्चाई के मुक्तिपथ को आंखो से ओझल कर देता है।

ऐसे समय कोई व्यक्ति सत्य की खोज करता हुआ फिर शुद्ध मार्ग ढूंढ़ निकालता है। स्वयं उस पर आरूढ़ होकर परम सत्य के अंतिम लक्ष्य तक पहुंचता है और शुद्ध बुद्ध हो जाता है। भव संस्कारों की बेड़ियां तोड़कर भवबंधन से पूर्णतया उन्मुक्त हो जाता है। लोकीय और लोकोत्तर सच्चाइयों से पूर्णतया अभिज्ञ हो जाता है। ऐसा व्यक्ति जगत-जंजाल में उलझे हुए लोगों की दयनीय दशा देखकर असीम करूणा से भर उठता है। जानता है कि सारे लोग मुक्ति के इस कठिन मीर्ग पर चलकर अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पायेंगे। पर जितने इसके योग्य हैं उन्हें तो यह विमुक्ति पथ मिले। अन्य लोग भी जितने जितने चल पायेंगे उतने तो लाभान्वित होंगे ही। इस जन्म में नहीं तो किसी भावी जन्म में मुक्त हो जायेंगे। कोई इस मुक्ति मार्ग पर एक कदम भी नहीं चलना चाहेगा तो क्या किया जाय? ऐसा व्यक्ति अपने ही मंगल से वंचित रह जायेगा। समीप ही गंगा बहती हो तो भी प्यासा का प्यासा रह जायेगा। पर जो जितना लाभ उठा पायेंगें, उतना तो उठाएं। उन्हें वंचित क्यों रखा जाय? इस अत्यंत करूणचित्त से मार्ग प्रकाशित करने के लिए कृतसंकल्प होता है। आरंभ में कुछ कठिनाइयां आती हैं। भिन्न भिन्न मत मतान्तरों में उलझे हुए लोग मन में शंकाएं जगाते हैं। क्या यह व्यक्ति सचमुच बुद्ध हो गया है। यह जो बताता है क्या यह सचमुच मुक्ति का मार्ग है? हमारी परंपरागत मान्यता से तो मेल नहीं खाता। सही मार्ग कैसे होगा? आदि आदि शंकाएं, कुशंकाएंमन में जगाते हैं। पर उसकी अमृत वाणी सुनकर धीरे धीरे आश्वस्त होते हैं। स्वानुभूति द्वारा उसके प्रति और मुक्तिदायिनी साधना विधि के प्रति सर्वथा निशंक हो जाते हैं।

भगवान गोतम बुद्ध सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर जब अपने पांच तपस्वी साथियों को विमल विमुक्ति का मार्ग दिखाने ऋषिपत्तन मृगदाय गए तो यही हुआ। उनकी जन्मभूमि शाक्य प्रदेश से आए हुए ये पांचो साथी जो लगभग छह वर्ष तक उनके साथ रहकर भिन्न भिन्न साधनाओं में उनका साथ देते रहे वे ही उनके प्रति इस प्रकार शंकालु बन गए थे। अपनी अंधी मान्यता का आवरण उन्हें यह स्वीकार ही नहीं करने देता था कि यह व्यक्ति सम्यक्सम्बुद्ध बन गया होगा। उन्होंने इसे कायदंडन की घोर तपस्या करते हुए देखा था। ऐसी दुर्द्धर्ष दुष्कर चर्या जो कि सामान्य व्यक्ति के लिए बिल्कुल असंभव थी। परंन्तु उससे किंचित मात्र भी लाभ न देखकर जब उसे त्याग दिया और मध्यम मार्ग अपनाया तो ये पांचो बड़े निरूत्साहित हुए। अन्ध मान्यताओ के गुलाम! वे यह स्वीकारने को ही तैयार नहीं कि काय-दंडन के अतिरिक्त और भी कोई मुक्ति का मार्ग हो सकता है उनकी दृष्टि में तो जिसने देह-दंडन का मार्ग छोड़ दिया उसने मुक्ति का मार्ग छोड़ दिया। ऐसा व्यक्ति बुद्ध कैसे हो सकता है? शंकाएं ही शंकाएं।अश्रद्धा ही अश्रद्धा। यहां तक कि उसे दूर से आता देखकर सामान्य शिष्टाचारजन्य स्वागत-सत्कार करने को भी तैयार नहीं थे।

परन्तु भगवान की सत्य-निष्ठ वाणी से कुछ प्रभावित होकर उनका उपदेश सुना। जब भगवान ने कहा कि मैंने जीवन जगत की चारों सच्चाइयों को केवल बुद्धि के स्तर परचिंतन मनन करके ही नहीं स्वीकारा है, मैंने अपने भीतर उनका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। जो कुछ कहता हूं, स्वानुभव के आधार पर कहता हूं। मैंने केवल दुख और दुख के मूलभूत कारण का सारा क्षेत्र ही अनुभूति के स्तर पर नहीं जान लिया, बल्कि दुःख का नितांत निरोध और निरोध के उपाय को भी स्वयं अनुभव करके जान लिया है।

कायाकष्टकी कठोर दुष्कर दुश्चर्या को त्याग कर भी कोई व्यक्ति दुःखविमुक्ति के अंतिम लक्ष्य तक पहूंच सकता है, इसका पूरा विश्वास नहीं हो रहा था। परन्तु उन्होनें जब भगवान की वाणी को अनुभव पर उतारा तो एक के बाद एक श्रोतापन्न अवस्था को प्राप्त करते हुए नितांत विमुक्त अर्हंत अवस्था उपलब्ध कर ली। अब शंका संदेह के लिए स्थान ही नहीं रह गया। प्रत्यक्ष से बढ़कर प्रमाण ही क्या?

भगवान के यह पांचो पुराने सहयोगी अपने अन्य अर्हंत साथियों सहित धर्मचारिका के उस प्रथम अभियान में सम्मिलित हुए जिसके अन्तर्गत एक एक अर्हंत ने अलग अलग मार्ग पर जाकर नगर नगर, गांव गांव और घर घर में शुद्ध धर्म का संदेश पहुंचाया और असीम अनुकम्पापूर्वक बहुजन में लग गए। कृतज्ञता विभोर हो लोकसेवा में लग गए। अपने शास्ता के प्रति उनकी यही सही वन्दना हुई।

***

उन्हीं दिनों की एक और घटना।

वाराणसी के क्षत्रिय कुल में जन्मा युवक मेळजिन। शिल्प विद्या में प्रभूत-प्रसिद्धि प्राप्त। अपने किसी पूर्व जन्म के किसी पुण्य कर्म के कारण ऋषिपत्तन में विहार कर रहे भगवान बुद्ध के संपर्क में आया। उनका धर्म उपदेश सुनकर उत्साहित हुआ और प्रव्रजित होकर विपश्यना साधना के अभ्यास में लग गया। समय पाकर मुक्त हुआ, अर्हंत हुआ तो उसने मोदभरे चित से अपनी उपलब्धि की घोषणा करते हुए कहा, –

"न कङ्खंमभिजानामि" मुझे कोई शंका नहीं है।

"सब्बञ्ञू अपराजिते" उन सर्वज्ञ भगवान बुद्ध के प्रति जो लोकीय और लोकोत्तर सभी तथ्यों के जानकर हैं और ऐसे मारविजयी हैं जिनकी जीत को कोई पराजय में नहीं बदल सकता।

"सत्थवाहे महावीरे" भटके हुए लोगों को सही रास्ते ले जाने वाले सार्थवाह के प्रति, अपने भीतर के दुश्मनों को परास्त कर देनेवाले महावीर के प्रति,

"सारथीनं वरूत्तमे" उन श्रेष्ठ उत्तम सारथी के प्रति जो बिगड़े हुए लोगों को बिगडैल घोड़ों की तरह सुधार देते हैं।

"मग्गे पटिपदायं वा" उनके बताए हुए मुक्ति के मार्ग पर कुशलतापूर्वक प्रतिपादन कर सकने की साधना विधि के प्रति,

"कङ्खामय्हं न विज्जति" इन सब के प्रति मेरे मन में शंका जरा भी नहीं रही।"

शंकाएं रहती भी कैसे? स्वयं अनुभव करके जो देख लिया। केवल श्रोतापन्न अवस्था तक पहुँच जाय तो ही सारी शंकाएं, विचिकित्साएं दूर हो जाती हैं। अर्हंत अवस्था पर पहुंच जाने पर तो कहना ही क्या? इस प्रकार स्वानुभव द्वारा समस्त शंकाओंसे मुक्त हुआ व्यक्ति जब कृतज्ञता के भाव से विभोर हो बुद्ध वंदना करता है तो सही वंदना ही करता है।

***

भगवान के जीवन काल की एक और घटना।

एक परम साधक कंखारेवत जोकि श्रावस्ती के एक धनी गृहस्थ के घर जन्मा और पला। बड़ा होकर भगवान के संपर्क में आया और उनसे विपश्यना साधना सीखकर उत्कृष्ट निपुणता प्राप्त की।अंततः अनासक्त

अर्हंत होकर भगवान के प्रति कृतज्ञता के हर्ष उद्गार प्रकट करता हुआ कहता है,

"पञ्ञं इमं पस्स तथागतानं" देखो तथागतों की इस प्रज्ञा को!

"अग्गि यथा पज्जलितो निसीथे"

जैसे अंधेरी रात में अग्नि प्रज्वलित हो। जो व्यक्ति अर्हंत अवस्था तक पहुंच जाता है वह भलीभांति समझ जाता है कि किसी एक ही बुद्ध की, एक ही तथागत की नहीं, बल्कि सभी बुद्धों की, सभी तथागतों की प्रज्ञा एक जैसी होती है। बुद्ध बुद्ध में कोई भेद नहीं होता। सभी भूरिप्रज्ञ, सभी महाप्रज्ञ, सभी स्थितप्रज्ञ और सभी अनेकों को प्रज्ञा प्रदान करनेवाले, दीप से दीप जलाने वाले। उनके प्रज्ञा दीपों से अनेकों के अन्तर्दीप प्रज्वलित हो उठते हैं। इसीलिए कहा,

"आलोकदा चक्खुददा भवन्ति"

वे सभी बुद्ध अनेकों को बोधि का आलोक प्रदान करनेवाले होते हैं। अनेकों को चक्षु प्रदान करनेवाले होते हैं।

"ये आगतानं विनयन्ति कङ्खं"

उनके पास जो आए, शंकाओं का निवारण करते हैं। विपश्यना साधना के अभ्यास द्वारा जब साधक के अपने प्रज्ञाचक्षु खुल जाते हैं, वह स्वयं सत्य का साक्षात्कार कर लेता है, तो शंका के लिए स्थान ही कहां रह जाता है?

धन्य है साधक और धन्य है साधकों को प्रज्ञा प्रदान करनेवाले तथागत!

***

भगवान के जीवन काल की ही एक और घटना।

मगध की राजधानी राजगृह के धनी सेठ की सुन्दरी पुत्री युवावस्था को प्राप्त हुई तो पूर्व पुण्य के कारण कामभोग की ओर प्रवृत न होकर श्रामण्यफल की ओर उन्मुख हुई। घरबार छोड़कर सत्यान्वेषणी श्रमणी का जीवन जीने की तीव्र आकांक्षा जागी उसमें। पर माता पिता ने अनुमति नहीं दी। बेचारी मन मसोस कर रह गयी। उसके मन से वैराग्य की भावना मिटा देने के उद्देश्य से माता-पिता ने उसका विवाह शीघ्र ही एक धनी श्रेष्ठी-कुमार से कर दिया। पतिगृह में रहते हुए और सामान्य दाम्पत्य-जीवन जीते हुए उसे शीघ्र ही गर्भ रह गया। इसकी जानकारी न उसे हुई, न पति को। गर्भधान के कुछ ही दिनों बाद फिर उसके मन में तीव्र धर्मसंवेग जागा। कामभोग के जीवन से जी ऊब गया। प्रव्रज्या के लिए मन छटपटाने लगा। पति ने उसकी यह मनोदशा देखी तो स्वीकृति दे दी और स्वयं उसे श्रावस्ती के पास जेतवन विहार में छोड़ आया, जहां उसकी विधिवत प्रव्रज्या हुई। वह श्रमणी का पवित्र विरक्त जीवन जीने लगी।

चंद दिनों के बाद ही उसे पता चला कि वह गर्भिणी है। जैसे जैसे गर्भ बढ़ने लगा, अधिक लोग जानने लगे कि यह गर्भिणी है। अनजान लोगों ने उस निरपराध को लांछित किया। उसके आचरण पर संदेह किया। भगवान के विरोधी देवदत्त ने बात का बतंगड़ बनाया और उसे कलंकिनी घोषित किया। बेचारी निर्दोष दुखियारी बिलखती हुई भगवान के पास आयी और उसने अपने बेकसूर होने की बात कही।

भगवान ने देखा – यह बेटी सचमुच बेगुनाह है। इसका साध्वी जीवन बड़ा पवित्र रहा है। परन्तु उसे लोकोपवाद से बचाने के लिए उन्होंने भिक्षु उपालि के जरिए चारों परिषदों (भिक्षु-भिक्षुणी, गृही उपासक-उपासिकाओं) का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक जांच समिति बैठयी, जिसमें देश का राजा प्रसेनजित, महाकुल अनाथपिंडक, चुल्ल अनाथपिंडक, महाउपासिका माता विशाखा और अन्य भिक्षु-भिक्षुणियां शामिल हुई। माता विशाखा ने इस समिति में सर्वाधिक भाग लिया और सभी प्रकार की जांच-पड़ताल करके समिति ने निर्णय दिया कि गर्भिणी युवा साध्वी परम पवित्र है। प्रव्रज्या के पूर्व पतिगृह में अपने पति के संयोग से ही उसे गर्भ रहा है।

साध्वी का मिथ्या कलंक धुला। गर्भ का समय पूरा होने पर अनेक पुण्य पारमिताओं से परिपूर्ण एक महा तेजस्वी पुत्र को उसने जन्म दिया। कोशलनरेश ने शिशु को राजमहल में बुलवा लिया और राजपरिवार की देख-रेख में उसका लालनपालन होने लगा। उसका नाम काश्यप रखा गया। राजकुमीरों की भांति पलने के कारण कुमार काश्यप कहलाया। युवावस्था प्राप्त करने पर उसे अपने जन्म-वृतांत की सारी जानकारी हुई। वह भगवान के संपर्क में आया। उनकी अमृतदायी धर्मदेशना सुनी तो उसके मन में प्रव्रज्या के लिए तीव्र उत्कंठा जागी। पोषक पिता प्रसेनजित की अनुमति लेकर वह भगवान के हाथों प्रव्रजित हुआ। शुद्ध धर्म की बारीकियों को अनुभव के स्तर पर जानने में सक्षम हुआ। भगवान से विपश्यना विधि सीखकर, अरण्य में जाकर पुरूषार्थ करता हुआ अनागामी अवस्था को प्राप्त हुआ। पुनः भगवान के दर्शन के लिए श्रावस्ती आया तो देखा कि अनागमी अवस्था प्राप्त किसी एक अन्य साधक ने भगवान से कोई गंभीर प्रश्न किया है और भगवान ने उसका अत्यंत समाधानपूर्वक उत्तर दिया है। इसे सुनकर वह फिर गंभीर साधना में रत हो गया और शीघ्र ही अर्हंत फल लाभी हुआ।

यही भिक्षु कुमार काश्यप आगे चलकर भगवान द्वारा धर्म सिखाने की कुशल कला में अग्र की उपाधि से सम्मानित हुआ।

अर्हंत अवस्था प्राप्त करते ही कुमारकाश्यपका हृदय कृतज्ञता के मंगलभावों से अभिभूत हो उठा। उस मंगल वेला में उसने जो उदान गाया वह चिरकाल तक साधकों के मानस को उत्साह-उमंग से भरने में सक्षम साबित हुआ है। अर्हंत कुमार काश्यप के हर्षोद्गार हैं,

'अहो बुद्धा! अहो धम्मा! अहो नो सत्थु सम्पदा!'

अरे आश्चर्यजनक है सभी बुद्ध जो सभी लोकीय अनित्य धर्मा और लोकोत्तर नित्य धर्मा सत्यों को स्वयं जानकर इन मंगलकारी धर्मों का समय समय पर उद्घाटन करते हैं ओर इस विपश्यना विद्या को प्रकाशित करते हैं जिससे इन सत्यों का साक्षात्कार किया जा सके। यही शास्ता की अनमोल धर्मसंपदा है, जो कि अत्यंत आश्चर्यजनक है।

'यत्थ एतादिसं धम्मं सावको सच्छिकाहिति'

ऐसे कल्याणकारी धर्म का उनके शिष्य श्रावक साक्षात्कार करते हैं और मुक्त अवस्था प्राप्त कर धन्य हो उठते हैं।

अर्हंत कुमार काश्यप आगे कहता है,

"असङ्ख्येय्येसु कप्पेसु सक्कायाधिगता अहुं

"मैं स्वयं असंख्य कल्पों तक नाम-रूप के प्रपंच को सार मानता हुआ उसके आधीन रहा।

'तेसं अयं पच्छिमको चरिमोयं समुस्सयो'

अब तो इनका यह अंतिम आविर्भाव है। इन पंचस्कंधों का यह अंतिम समुच्चय है।

'जातिमरण संसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो' जन्म-मरण का अंतिम संसरण है। अब पुनर्जन्म नहीं है।"

भवचक्र के बंधनों से यों नितांत विमुक्त हुआ साधक कुमारकाश्यप **'अहो बुद्धा ! अहो धम्मा! अहोनो सत्थुसंपदा!'** का हर्षोद्गार करता हुआ परम धन्यता को प्राप्त हुआ।

आओ, साधकों! हम भी भगवान के बताए हुए कल्याणकारी मार्ग पर चलकर अत्यंत कृतज्ञता के भवों से भरकर अपनी वन्दना प्रकट करें और अपना मंगल कल्याण साधें!

मंगल मित्र,

स.ना.गो.